International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2017; Page No. 44-47

शॉपिंग मॉल संस्कृति : मध्ययुगीन मानसिकता की महक और स्त्री

प्रियंका कुमारी सिंह

हिन्दी विभाग, पश्चिम बंगाल राज्य विश्वविद्यालय (बारासात), 24 परगना (उत्तर), बेरुनानपुकुरिया, पोस्ट – मल्लिकापुर, बारासात, कोलकाता, वेस्ट बंगाल, भारत

सारांश
आज के इस उपभोक्तावादी दौर में हर व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा चीजों को संचय करने की जद्दोजहद में किसी भी हद को पार करने को तैयार है। क्योंकि मार्केट में उसे अप टू डेट रहना है। उसे पावर–पोजीशन–पैसा चाहिए। फेम चाहिए। लेकिन इन सपनों की क्या कीमत है इससे आज का हमारा युवा वर्ग अनजान है या यों कहें की वो अपनी सपनीली दुनिया से बाहर आना ही नहीं चाहता। वो तो बस बाजार की चकाचौंध में बह जाना चाहता है। स्त्री भी इस बहाव को महसूस कर रही है और बाजार का हिस्सा बन अपनी उपस्थिति उसने दर्ज कर दी है। आवश्यकता बस इस बात है कि वो संतुलन बनाए रखते हुए आगे बढ़े। उड़ान भरने की चाहत में व्यवस्था की कठपुतली बनकर न रह जाए। क्योंकि व्यवस्था और बाजार ने नये शोषण तंत्र की सृष्टि की है। स्त्री को आज उपनिवेश बनाने की साजिशें हो रही हैं। अतः स्त्री को बाजार की विसंगतियों को समझना होगा। सांस्कृतिक अवमूल्यन के इस दौर में उसे अपनी इयत्ता को बरकरार रखना होगा।

मूल शब्द: शॉपिंग मॉल संस्कृति, मानसिकता, महक, स्त्री

प्रस्तावना
आम आदमी की जीवन–धारा की सार्थक ध्वनि को गहरे धरातल तक पकड़ने की कोशिश करते हुए आज समय की घड़ी भूमंडलीकरण, बाजारीकरण, उदारीकरण, मुक्तिकरण और न जाने कितने ही करणों सहित अपने नए रंग–ढंग के साथ खड़ी हैं। चूँकि आज का समय अंग्रेजी और अंग्रेजियत का समय है। आज से पहले भी एक समय था जब अंग्रेज 200 वर्षों तक कोई–न–कोई वस्तु दिखाकर आम भारतीयों को ललचाते और अपना उल्लू सीधा करते थे। आज एक बार फिर से वक्त वहीँ आकर ठहर गया है। शॉपिंग मॉल की संस्कृति ने एक बार फिर से हम भारतीयों को चीजों को दिखा–दिखाकर ललचाना शुरू किया है। इन शॉपिंग मॉलों में आज प्लास्टिक की थैलियाँ तक 5, 10 और 15 रूपये के दामों में बेचीं जाती हैं। बाजार ने आज एक ऐसे उपभोक्तावादी साम्राज्य की सृष्टि की है, जहां हर वस्तु की, हर चीज की एक तय और निश्चित कीमत है।

एक तरफ स्टेट्स सिंबल बन गई हैं महंगी विदेशी कारें, बंगलों में लगा इटैलियन फर्नीचर व विदेशी संगमरमर। ...युवा वर्ग मीडिया और इंटरनेट की सूचना क्रांति के विस्फोट से अमेरिकी पश्चिमी 'यंपी फंकी' पीढ़ी का अंतर्राष्ट्रीय नागरिक बन गया है, जिसकी जीवन–शैली और 'हैव फन' का जीवन–दर्शन पूरी तरह से 'मनी मंत्रा' से जुड़ा हुआ है। अपनी इच्छा–पूर्ति के लिए वह शराब न देने पर जेसिका लाल को गोली मार सकता है। प्रेम–निवेदन अस्वीकार करने पर युवती के चेहरे पर तेजाब डाल सकता है। उसे चाकुओं से गोद सकता है। 'न' नहीं सुन सकता। स्त्री यहां 'वस्तु' है और स्वयं युवतियों ने अपने–आपको 'अल्ट्रा फेमिनिन' बना, मुक्त बाजार में अपने को सारे संकोचों से मुक्त कर लिया है। आज वह शिकार नहीं, शिकारी बन गई है।[1] हालाँकि आज भी इस भौतिक युग की सर्वाधिक संघर्षशील जीव नारी ही है। लेकिन बावजूद सभी बाधाओं के आज की युवा स्त्री का 'सेंस ऑफ बिलांगिंग काफी पुष्ट हुआ है। समान शिक्षण और मीडिया ने उसकी सरलता और भोलेपन को चीरकर उसे समझदार (?) बनाने का भगीरथ श्रम किया है। अब केवल पुरुष ही स्त्री से नहीं खेलता स्त्री भी पुरुष के साथ खेलती है। उसने बोलना सीख लिया है। आज जबकि '...हमारी नवीनतम मुक्त बाजार व्यवस्था और बहुराष्ट्रीय कंपनियां स्त्री को 'सब्जेक्ट' से 'ऑब्जेक्ट' बनाकर भारी मुनाफा लूट रही हैं।'[2] तब कहना न होगा कि खुद को 'वस्तु' और 'कमोडिटी' समझी जाने के खिलाफ खड़ी स्त्री आज जाने–अनजाने उसी बाजार का हिस्सा बनी और निरंतर बनती ही जा रही नजर आती है। अपनी व्यतिगत सत्ता को लेकर जेहाद छेड़ने वाली स्त्री ने उपभोक्ता संस्कृति के समक्ष अपने घुटने टेक दिये और टीवी चौनलों पर चौबीसों घंटे आज फ्लैश और नकद के लिये वह बेताब दीख रही है। बाजार को तो उसका मनचाहा हथियार मिल गया है। 'शरीरमाघं खलु धर्म साधनं' की जगह 'शरीरमाघं खलु धन साधनम' हो गया। कहना न होगा कि "..टीवी अथवा समूचा मीडिया जिस वैश्विक संस्कृति का प्रचार–तंत्र बना हुआ है, उसका परिणाम यह है कि पहले कालेजों में पढ़ने वाली युवतियां 'अल्ट्रा फेमिनिस्ट' बनकर कुछ दिखाना चाहती थीं, आज 'अल्ट्रा फेमिनिन' बन ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाना चाहती हैं। देह भी उनके लिए वस्तुतः साधन बन गई है। वास्तविक मुद्दे ग्लैमर की विकराल चमकीली छाया की तली में छिप गए हैं।"[3]

देह को केन्द्र में रखते हुए जिस्म के जर्रे–जर्रे की कीमत है सपनीली हकीकतों के इस बाजार में। नख–शिख की कीमत लगाने में यह बाजार कभी चुकता नहीं और मुस्कुराहट से लेकर खिलखिलाहट तक, हँसी से लेकर आंसू तक, शालीनता से लेकर नंगेपन तकय होंठ, दांत, नाक, मुंह, आँख, बाल, गला, वक्ष, कुचाग्र, कटि, कमर, योनि, मछली जैसी जाँघ, पीठ, नितम्ब, नाखूनय जिस्म के एक–एक इंच का कारोबार करता है और कीमत लगाने में कभी पीछे नहीं हटता। मध्यकाल की तर्ज पर नायिका भेद की पाठशाला में परचम लहराने के बाद एक बार फिर से आम्रपालियों और वैशाली की नगरवधुओं की सृष्टि कर रहा है यह बाजार। रिश्तों, संबंधों और जज्बातों तक की बोली लगाता है आज यह बाजार। हमारे सर से हमारी ही पगड़ी उछालता है यह बाजारय हमारे सरों से छत छीन लेता है यह बाजारय अपनी सारी बातें, नियम व शर्तें हमसे मनवाता है यह बाजारय मगर बड़े ही प्यार से और नजाकत के साथ। ये और बात है कि जब प्यार और नजाकत से बात न बने तो नियम और शर्तों की बड़ी–बड़ी आँखें तो हैं ही दिखाने और

डराने के लिए। लगभग हर जगह शर्तें लागू यानि कि 'कंडीशंस अप्लाई' (conditions apply) का साईन बोर्ड लटका नजर आता है। आधुनिक बाजार स्त्री की कमनीयता और सौंदर्य का जमकर फायदा उठा रहा है। इस शोषण के केंद्र में 'देह' ही है। "आज की मुक्त बाजार व्यवस्था में स्त्री देह, उसका सौंदर्य विज्ञापनदाताओं के हक में बहुत कारगर भूमिका निभा रहा है। स्त्री देह का बाजारीकरण करके विज्ञापन एजेंसियां अपनी और ग्राहकों की हितसाधक बनी हुई हैं।"4 धड़ल्ले से बाजार नारी को बिकाऊ देह बना देने के इरादतन यह शोषण तंत्र फैला रहा है और आज की नारी तितलियाँ बन इस उपभोक्तावादी मकड़जाल के भंवर में राजी–खुशी फंस रही है। इस संदर्भ में तसलीमा नसरीन ने बड़ी ही सार्थक टिप्पणी की है दृ "बाजार का आधुनिकीकरण हो रहा है। इसी के साथ नारी के बिकने पर भी लगी है इस युग की हवा।"5 नारी को बिकाऊ और उत्तेजक चीज बनाकर बाजार में उतारना और मुनाफा बटोरना इस पूंजीवादी समय में पुरुष वर्चस्ववादी समाज की सबसे बड़ी उपलब्धि है। तसलीमा नसरीन आगे लिखती हैं दृ "बाजार की जरूरत के हिसाब से खुद को पेश करना औरतें अचानक ही नहीं सीखतीं, जन्म से ही सीखती हैं। घर के लोगों–रिश्तेदारों से सीखती हैं, बाहर पैर रखते ही सीख लेती हैं। रेडियो–टेलीविजन से सीखती हैं, पत्र–पत्रिकाओं से सीखती हैं। औरतों की मैगजीन पढ़कर और भी ज्यादा सीखती हैं। दिमाग के हर तंतु में घुस जाती है इस तरह की शिक्षा। परिणाम यह कि अपने अधिकारों के बारे ज्ञान–बुद्धि रखने की क्षमता पुरुषों की तुलना में औरतों में बहुत कम है।"6 किन्तु यहाँ यह याद रखने की आवश्यकता है कि इस बाहरी चकाचौंध के प्रति आकर्षण की वजह कहीं न कहीं भीतरी हताशा, अवसाद, आर्थिक तंगी, दूहरी जिम्मेदारियों का निर्वहन, आर्थिक परतंत्रता और साथ ही साथ बेवजह रोक–टोक भी है। स्त्री के साथ कर्मस्थल पर होनेवाला शारीरिक शोषण, घर की समस्याएँ आदि उसे एक साथ सम्भालनी है। पारिवारिक दायित्व ढ़ोने के लिए पुत्री को विवश करने वाले ऐसे अनेक माता–पिताएं हैं जो उसकी कमाई को अपनी इच्छानुसार खर्च करने की स्वतंत्रता तक भी उन्हें नहीं देते। मध्यवर्गीय कामकाजी नारियों की ऐसी स्थिति है, कि वह चक्की के दो पाटों के बीच पिसती ही जा रही है। एक ओर मेहनत करके पैसा कमाकर परिवार संभालना है तो कभी दफ्तर के पुरुषों की बुरी नजर का उन्हें सामना भी करना पड़ता है। यही कारण है कि स्त्री अपनी अवस्था की बदहाली और परिस्थितिजन्य विवशता से मुक्ति पाने के लिए छटपटाती है और ग्लैमर की दुनिया की ओर आकर्षित होती है।

आज जिस तेजी से नैतिक मूल्य तेजी से बदल रहे हैं, उसी तेजी से समाज में नैतिकता के प्रतिमान बदल रहे हैं। परंपरा का मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन किए जा रहे हैं। फलतः आधुनिक समाज में एकल और एकाकी जीवन का प्रचलन बढ़ रहा है। अविवाहित रहते हुए स्त्री–पुरुष का माँ–बाप बन जाना आज एक आम बात है। अब उनमें अपराध बोध भी नहीं पनपता। क्योंकि भूमंडलीकरण ने हमें अपराधग्रस्तता के भाव से पूर्णतः मुक्त कर दिया है। आज के जेनरेशन में यह भाव पनपता ही नहीं है। फलतः सिंगल मदर और सिंगल फादर की अवधारणा हमारे समाज में बलवती हो रही है। फिल्मी हस्तियों के तर्ज पर अब छोटे शहरों में भी इसका प्रचलन बढ़ रहा है।

कहना न होगा कि 'आज स्त्री पर भूमंडलीकरण का हमला बेहद जटिल और खौफनाक है। आधी आबादी इसके दबाव से संत्रस्त है और उसकी स्थिति गुलामों से बदलने में देर नहीं है। भूमंडलीकरण दरअसल पूंजीवाद के ही प्रतिरूप और विस्तार का नाम है। यह शब्दजाल नव–उपनिवेशवाद व नव–साम्राज्यवाद का छद्म आवरण है। वित्तीय पूंजी के इस बेरहम युग में भूमंडलीकरण प्रकट तौर पर मानव–कल्याण या मानव–अधिकारवाद, जनतांत्रिकता व उदारवादी सदय राजनीति व प्रशासन का मुखौटा लगाकर आया है। इसका एक मात्र लक्ष्य हर हाल में, एन–केन–प्रकारेण मुनाफा है। मुनाफा पहले, इंसान बाद में – इसका नैतिक प्रतिमान है। व्यापक मुनाफे की खोज में विकासशील देशों में बहुराष्ट्रीय कार्पोरेशन प्रवेश कर बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं इनके द्वारा संचालित डब्ल्यू.टी.ओ., आई.एम. एफ. वर्ल्ड बैंक सीधे–सीधे देशों की कल्याणकारी नीतियों को संचालित कर रहे हैं। पर्यावरण, प्राकृतिक संसाधन, कृषि, खा। –सुरक्षा, औ।ोगिक व वाणिज्य प्राथमिकताएं अब देश की जनता या राजनीति तय नहीं करती, यह बहुराष्ट्रीय कंपनियां तय कर रही हैं और तीसरी दुनिया के विकासशील देशों की सरकारें इनके हाथों की कठपुतलियाँ बनकर नाच रही हैं।'7 आधुनिकता की आँधी में तो सब कुछ हरा ही हरा दिखाई दे रहा है। लेकिन साथ ही साथ हमें यह बात याद रखनी होगी कि हर परिवर्तन के कुछ उज्ज्वल और कुछ स्याह पक्ष हुआ करते हैं। भूमंडलीकरण के साथ भी ऐसा ही है। बीसवीं सदी हे अंतिम चरण में बाजार आधारित भूमंडलीय व्यवस्था अपने पूरे ताम–झाम के साथ आई और प्रचलित हो गयी। मुक्त–मंडी ने पूरी दुनिया को अपने छत्र तले ले लिया। और इस तरह आर्थिक उदारीकरण ने संपूर्ण विश्व को एक संगठित बाजार में तब्दील कर दिया। छोटे देश इस नयी व्यवस्था से खासे प्रभावित हुए। उनकी अर्थ व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन भी देखने को मिले। इस स्वतंत्र बाजार व्यवस्था ने कमोबेश हर देश की संस्कृति को प्रभावित किया और सांस्कृतिक विचलन की स्थिति पैदा कर दी। इस संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं दृ "दुनिया की हर संस्कृ ति अपने बचाव में भूमंडलीकरण पर सवाल उठाती है, उसे चुनौती देती है, मगत अंततः भूमंडलीकरण से प्रभावित होती है। पश्चिम सारी दुनिया को प्रभावित करना चाहता है। शायद इसीलिए भूमंडलीकरण को पश्चिमी संस्कृति के दिग्विजय का माध्यम माना जाता है। भूमंडलीकरण गैर–पश्चिमी संस्कृतियों के लिए मारक स्थापित हो रहा है। जो समाज बहुसांस्कृतिकता से संपन्न थे, वे एकायामी होते जा रहे हैं।"8 वहीं सुधीश इससे भिन्न मत देते हुए लिखते हैं – "आज के भूमंडलीय युग में, जब देशों और राष्ट्रों की एक्सक्लूसिव गोपनीयता एवं निजता चारों ओर से खुली हुई नजर आती है, जब अनेक भूमंडलीय सांस्कृतिक सुचना चौनल काम कर रहे हैंय तब कोई नई चीज अथवा विचार नकल का 'चयन' नहीं होता, वातावरण की तरह होता है। स्त्री का समाज के केंद्र में आना और किसी हद तक विचार के केंद्र में आना हमारे आर्थिक–सामाजिक विकास का ही परिणाम है।"9 लेकिन हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि भूमंडलीकरण ने जहां स्त्री के विकास के नए रास्ते सुझाए उतनी ही दुगनी गति से उसे कैद करने के फार्मूले भी सार्वजनिक कर दिए। आलम यह है कि स्त्री की हालत आज पहले से कहीं ज्यादा बदतर है। भूमंडलीय व्यवस्था के इस चकाचौंध में स्त्री आर्थिक स्वावलंबन के बावजूद भी अदृश्य रूप से मुक्त बाजार व्यवस्था के अधीशत्व का शिकार बन रही है और मुक्त हो रही है! पहले उसके श्रम का शोषण स्थानीय पूंजीपति वर्ग द्वारा होता था किंतु आज स्थिति में बदलाव आया है, शोषण के तरीके में बदलाव आया है, आज उसके श्रम का शोषण वाशिंगटन, जापान, बैंकाक में बैठे अदृश्य मालिकों द्वारा होता है। ऋषिकेश राय लिखते हैं दृ "भूमंडलीकरण ने भले ही विचारों और महाआख्याओं की समाप्ति की उद्घोषणा करने में उद्ग्रीव तत्परता का प्रदर्शन किया हो एवं बाजार की महासंतुलनकारी शक्तियों की शान में कसीदे पढ़े हों, लचीले श्रम की उपलब्धता को सुनिश्चित करने की दुर्दमनीय आकांक्षा के पीछे स्त्री को अधीनस्थ बनाने का उपक्रम छिपाया नहीं जा सकता।"10 भूमंडलीकरण के चलते औरतों दृ विशेषकर भूमिहीन किसान, मजदूर और असंगठित क्षेत्र में लगी औरतों–की व्यापक तौर पर छंटनी हो रही है। समान कार्य के लिए ही स्त्री को पुरुषों से कम मजदूरी देने की प्रथा के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियों की

नजर तीसरी दुनिया के देशों के सस्ते मानव–श्रम, विशेषकर स्त्री श्रमिक के आर्थिक, शारीरिक, सामाजिक शोषण पर बल है, ताकि ज्यादा से ज्यादा मुनाफा पीटा जा सके। भूमंडलीकरण नए मजदूरों की सुरक्षा के लिए बने कानूनों के खिलाफ युद्ध–सा छेड़ दिया है। औरतों को सुरक्षा प्रदान करने वाले कई कानून निरस्त हो गए हैं, जैसे– संघों–संगठनों में भागीदारी, आठ घंटों का दिन, प्रसूति अवकाश व अन्य स्वास्थ्य–सुविधाएं। कृषि सामानों की बढ़ती कीमतें, भूमि–सुधार कार्यक्रम का लागू न होना और बहुराष्ट्रीय कंपनियों व सरकार के साझेदारी से सरकार द्वारा जनता के प्रति जिम्मेदारी के क्रमशः त्याग के नतीजे सामने आने लगे हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, बैंकिंग, बीमा, जल, वि्युत, सड़कें व यातायात – सबका निजीकरण हो रहा है।[11]

दरअसल जब हम भूमंडलीकरण के निहितार्थ पर ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि नारी जीवन का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है जो इस विषय से अप्रभावित न हो रहा हो। बीसवीं सदी में भारत में नारी–चेतना व नारीवाद – स्त्री–विमर्श को दो अलग–अलग कालखंडों में स्पष्ट तौर पर वर्गीकृत किया जा सकता है, पहली गुलामी की अर्द्धशती जिसमें बड़े पैमाने पर महिलाओं को शिक्षा मिली। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज तथा गांधीजी के आंदोलन के कारण स्त्री की समाज में सक्रियता बढ़ी। स्वतंत्रता के बाद तेजी से मध्यवर्ग का विस्तार हुआ और स्त्री की आर्थिक–सामाजिक–वैयक्तिक स्वतंत्रता के द्वार खुले। यह आंदोलन नारीवादी राजनीतिक दलों, संघों, संगठनों व स्वयंसेवी संस्थाओं और व्यक्तिगत प्रयत्नों से इतना कारगर हुआ कि सन् '60' से '80' तक की अवधि में स्थितियां आश्चर्यजनक ढंग से सकारात्मक समानतापरक व बेहतर हुईं। नारी–शक्ति व आंदोलनों से कई नए कानून बने और कुछ कानूनों में संशोधन हुआ।[12] स्त्री की छवि में बदलाव आने लगे। भारतीय पारम्परिक स्त्री पारंपरिकता के चौखटे को पार कर 'मॉड' बनने लगी। अब उसके पास ढाई फीट का आँचल नहीं रहा। उसमें परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित होने लगे। "अस्सी–नब्बे के दशक में मां का चेहरा बदलने लगा। परंपरागत साड़ियों और सिंदूरी चवन्नी–छाप लाल बिंदी व जुड़े का स्थान क्रमशः सलवार–कमीज, पैंट–शर्ट और खुले–कटे बालों ने ले लिया। उदारीकरण और ग्लोब्लाइजेशन ने अनेक स्तर पर प्रभाव छोड़े। घर में अनेक तरह के किचन एंप्लायंस होने के कारण घरेलू–कार्यों की अति व्यस्तता से मुक्ति मिली। टीवी चौनलों से विदेशी सोच, संस्कृति और सूचनाएं और विदेशी जीवन–शैली घर–घर में घुस गई। सौंदर्य–प्रसाधनों व ब्यूटी पार्लरों का प्रचलन बढ़ने के कारण सौंदर्य एवं व्यक्तित्व के प्रति सजगता बढ़ी। विज्ञापनों और टीवी सीरियलों में भी आजकल मांओं को अल्ट्रा मॉडर्न के रूप में निरुपित किया जाता है। इस गुपचुप परिवर्तन ने मांओं की पोशाक, परिवेश, आचरण और मूल्यों को भी प्रभावित किया है।"[13]

इस तर्क से कदापि इनकार नहीं किया जा सकता कि भूमंडलीकरण के आने से स्त्री के हालातों और उसकी हालत में आमूल चूल परिवर्तन हुए। लेकिन देश, समाज और परिवेशगत मानसिकता उस पर हावी रही। स्त्री को अच्छी और बुरी के खांचों में बाँट दिया गया। जाहिर सी बात है कि पितृसत्ता के चौखटे को स्वीकार करने वाली साड़ी–ब्लाउज और सिंदूर–बिंदी के आवरण में लिपटी गूंगी गाय बनी औरत अच्छी, और आधुनिकता की बाढ़ में भी जा रही, आँखें लड़ाने वाली, हर बात का जवाब देने वाली, पैंट–शर्ट–स्कर्ट पहनने वाली औरत बुरी और चरित्रहीन मानी दृ जानी जाने लगी। उसकी स्थिति बद से बदतर होती चली गई। मान भंग और शील भंग की घटनाएं तेज होने लगीं। स्त्री को ताश के पत्तों की तरह बांटने की साजिशें तेज हो चलीं। उसे मोहरा बनाया जाने लगा।

इस तथ्य को भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता कि आज के बाजारवादी समय में स्त्री देह के सौन्दर्य का व्यवसायीकरण कर निरूसंदेह रूप से पितृसता और बाजार ने स्त्री को 'शो गर्ल्स' में तब्दील कर दिया है। आज स्त्री का पूरी तरह से कायांतरण हो चुका है सतर के दशक के फिल्मों से लेकर इक्कीसवीं सदी की दहलीज तक पहुँचती हुई बाजार व्यस्था में स्त्री नाची और खूब जमकर नाची। बाजार ने स्त्री की देह का व्यवसायीकरण किया और आमफहम स्त्री ने भी बड़े ही जोशों–खरोश के साथ उसमें हिस्सा लिया। खासफहम स्त्री तो थी ही मॉडर्न और फैशनेबुल। वह सिगरेट–सिगार से लेकर शराब और पुरुष शबाब तक को चख चुकी है। इस खास स्त्री ने किसी चीज से परहेज नहीं किया है। किन्तु आम स्त्री को भी 'खास' बनने की ख्वाहिश थी और अपनी ख्वाहिशों को पूरा करने के लिए, अपनी कामनाओं की तुष्टि के लिए स्त्री बाजार की ओर बढ़ी और बढ़ती चलती गई। क्योंकि पूंजी के नाम पर स्त्री के पास केवल मात्र उसकी देह रह गई थी, जिसे वह समय–समय पर कैश करने को आतुर और लाचार हो गई थी। बाजार के बीच खड़ी स्त्री की कामनायें सतुंष्ट हो रहीं थीं। वह खुश थी। उसे पैसा, पावर और पोजीशन चाहिए था। इस संदर्भ में जैन अरविंद का मत है कि "उसे भी सता में हिस्सा चाहिए था और और उसके पास हथियार के रूप में सिर्फ उसकी देह थी। चूँकि देह उसकी थी, इसलिए वह उसका इस्तेमाल करने के लिए 'स्वतंत्र' थी दृ वह फिल्मों में, राजनीति में, उ।ोग में, सौन्दर्य–प्रतियोगिताओं में देह की कीमत वसूल कर रही थी दृ वह पुरुषों के खेल में अपनी राजी से शामिल हो गई थी दृऔर उनके नियमों के हिसाब से खेल रही थी।"[14]

बाजार के इस खेल में मीडिया की भी बड़ी मिलीभगत थी और सूचना का संचार तंत्र पूंजी का प्रचार करने में महत्वपूर्ण भागीदारी निभा रहा था। आज मीडिया की सहभागिता के जरिए ही बाजार ने सौन्दर्य स्वतंत्रता के ऐसे मिथकों और दुश्चक्रों का सृजन किया है जिससे बाहर निकलना स्त्री के वश में तो निरूसंदेह नहीं है। रजनी गुप्त कहतीं हैं कि – "...स्त्री की मान–मर्यादा के प्रति अति संवेदनशील समाज पूंजीवादी उपभोक्ता संस्कृति द्वारा स्त्री को प्रयोज्य बनाने से कतई नहीं हिचकिचा रहा, लेकिन यही कमाऊ स्त्री जब अपने समानाधिकारों और लोकतांत्रिक वैज्ञानिक नजरिये की अनिवार्यता पर जिरह करती है या बदलाव की क्रांतिकारी मुहिम छेड़ने लगती है तो उसके रास्ते में तमाम बाधाएं खड़ी की जातीं हैं। बार–बार भारतीय संस्कृति, परंपरा, धर्म, नैतिकता और सनातन मूल्यों की दुहाई देकर उसके बढ़ते कदमों को रोका जाता है।"[15]

यह मीडिया आज के जेनरेशन की सेक्सुआलिटी को बहुवचन के रूप में प्रस्तुत करता है। आज पुरुष देह भी उतने ही केंद्र में है जितनी कि स्त्री देह। आज पुरुष की मर्दानगी पर हेटरो सेक्सुआलिटी के संदर्भ में बहसें हो रही हैं। नए उपभोक्ता समाज में ब्रांडों का कारोबार अब पहले की भांति स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के अलग–अलग खानों में कैद नहीं रह गया है। आज के बाजार में स्त्रियों को वह सामान बेंचा जा रहा है जो पुरुषों के लिए बनाया जाता रहा और पुरुषों को स्त्रियों के लिए तैयार किया गया माल पसंद आने लगा है। इसे ही मीडिया में 'जेंडर–बेंडर' कहा जाता है। उपभोक्ता क्रांति का यह पूरा का पूरा का माहौल भारतीय सेक्सुआलिटी कोई नई रोशनी से देखने को मजबूर करता करता है। अब भारतीय समाज में 'वुमन ऑन टॉप' की अवधारणों बढ़ रही है जिसके तहत् औरतें मर्द के नीचे दबे होने या उसके एहसास की शिकार नहीं रह जाती और हर वीमेन आज 'प्रेटी वीमेन' बनकर रह जाती है। चाहे वह सिने तारिका हो अथवा गाँव की जंगली बंजारन भूमंडलीकरण और बाजारवाद हर किसी को प्रिटी फील कराने का ख्वाब दिखाता अवश्य है।

बाजार यदि स्त्री को घर में बुर्के और बाजार में बिकनियाँ नहीं बनाता–पहनाता तो उसका सीधा–सा असर देश की अर्थव्यस्था पर पड़ता है। सौन्दर्य उ।ोग के बल पर, बुर्का और बिकनी की तर्ज पर फिल्म, राजनीति, विज्ञापन, उ।ोग, प्रसाधन सेवा, प्रचार–तंत्र, पोर्नोग्राफी प्रकाशन और 'आनंद' का बाजार जो कि अरबों–खरबों का धन्धा हैय उसे संबल मिला। ये अलग बात है कि पितृसता और बाजार के इस खेल में आज पारम्परिक घर चौपट होता चला जा रहा है। आधुनिक और विक्षुब्ध स्त्री ने अपनी देह को अपना हथियार तो बनाया किन्तु पुरुषों के बनाए इस भयावह खेल का वह स्वयं भी हिस्सा हो गयी। रूपया, डॉलर, पाउंड अर्थात् पैसा, पावर और पोजीशन के उहापोह में स्त्री स्वयं गुमराह हो गई है।

बहुराष्ट्रीय पूंजी के समक्ष सुंदर स्त्री मात्र शतरंज का एक मोहरा भर नजर आती है। उ।ोगपतियों से लेकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा हर क्षण, हर जगह स्त्री की बोली लगाई जा रही है। वह मात्र एक बिकाऊ चीज मात्र बनकर रह गई है। गौर करने वाली बात तो यह है कि यह बोली अथवा उ।ोगपतियों द्वारा तय की गयी स्त्री की कीमत उसे इनाम, पुरस्कार, पारिश्रमिक किसी भी रूप में दी जा सकती हैय और आज स्त्री इसे लेकर गर्व से फूली नहीं समा रही है। विश्व सुन्दरी प्रतियोगिताओं में जब हजारों विश्व सुंदरियों को लाईन लगाकर देह प्रदर्शन के लिए लाकर खड़ा कर दिया जाता है तब नारी राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय दलालोंके हाथों में नाचती कठपुतलियाँ या सिर्फ गुड़िया मात्र के एक वस्तु, साधन या माल भर होती है। खरीददार की शर्तों पर खेल–खेलने में सुन्दरी की हार तो पहले से ही निश्चित है। हार में ही जीत का एहसास आज स्त्री को सुकून प्रदान करता है।

आज की ग्लोबल होती जा रही स्त्री एक होड़ का शिकार हो चुकी है। और यह होड़ है ख्याति प्राप्त कर ऊँचाइयों और बुलंदियों को छूने का। आज की लोकल स्त्री भी फेम और फेमिना के पीछे भागती हुई Diva होनी चाहती है। और इस फेम (Fame) का नशा इतना नशीला होता है कि हर स्त्री इस नशे में डूबती चली जाती है। वह नशे में मदहोश होना चाहती है, अपने आप को भूल जाना चाहती है। और इस नशे को आग और पानी देता है उसका सौन्दर्य जिसका इस्तेमाल स्त्री अस्त्र की भांति करती है। आज स्त्री सता की ऊँचाइयों को छूना चाहती है किन्तु उसे यह याद रखना होगा कि सता के विमर्श में सुंदरी की उपयोगिता तभी तक है, जब तक उसका सौन्दर्य, उसकी अपनी देह, जो कि गठी हुई, खुबसूरत और लचकदार हैय कायम है।

साहिर लुधियानवी की पक्तियाँ हैं–

> औरत ने जनम दिया मर्दों को, मर्दों ने हमें बाजार दिया।
> जब जी चाहा मसला कुचला, जब जी चाहा दुतकार दिया।[16]

किन्तु फिर भी औरत ने इस जालिम दुनिया में जन्म लेकर मर्द को अपनी नियति का नियन्ता बना लिया। मर्दों की बोली की बेदी पर औरत को बारंबार बलिदान होना पड़ा। मर्द निरंतर औरत को बाजार की तरफ धकेलता गया और औरत जानबूझकर स्वयं को उस आग में झोंकती चली गयी। औरत मर्द की जिस आगोश में अपने को सुरक्षित महसूस कर रही थी। दरअसल वही उसको नर्क की खाई में धकेल रहा था। संभवतः यही कारण है कि स्त्री के लिए वक्त वहीं ठहर गया है जहाँ सदियों पहले था। उसकी स्थिति में सही मायने में आज भी कोई ज्यादा बुनियादी परिवर्तन नहीं दिखता।

विवेचनीय बात है कि एक अजीब सा दुश्चक्र है जो मर्द ही औरत के खिलाफ रचता है और औरत उस दुश्चक्र में फंसती चली जाती है। पितृसतात्मक व्यवस्था आज स्त्री के बीच बाजार में नंगा कर उसका उपहास कर रही हैं कि 'लो भोगो इस मुक्ति को, जियो अपनी आजादी को'। तुम्हारी मुक्ति की यही कीमत तय है हमारी सलीबों और आयतों में। औरत की बदकिस्मती यह है कि वह पूंजी की बाढ़ में बढ़ती चली जा रही है, रोशनी की चकाचौंध में उसकी आँखों की रोशनी धुंधली पड़ती ही चली जा रही है और वह अपनी पतन की गर्त में गिरती और ढ़लती ही चली जा रही है। साथ ही पितृसता उसकी सुरक्षा की भी आश्वस्ति देती है और वह भी स्त्री की आजादी के एवज में। स्त्री को विवाह संस्था के अंतर्गत पुरुष की मिल्कियत बनकर ही सुरक्षा की गारंटी मिल सकती है अन्यथा हर जगह स्त्री की आबरू को नोचने के लिए बदहवास कुते भारी मात्रा में मौजूद हैं। चूँकि आज का युग बाजारवाद का युग है और आज हर इंसान की जिंदगी एक हवस में तब्दील हो चुकी है। और वह अपनी इन हवसों को पूरा करने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के पश्चात यही कहते हुए अपनी बात समाप्त करना चाहूंगी कि शॉपिंग मॉल संस्कृति की चकाचौंध में स्त्री को अपनी चमक बरकरार रखनी है, उसे समय की बाढ़ में बहना नहीं है बल्कि उसका डटकर सामना करना है साथ ही अपने अस्तित्व और अस्मिता को भी बरकरार रखनी है। हालाँकि परिस्थितियाँ पूर्णतः प्रतिकूल हैं। स्त्री की अस्मिता और अस्मत दोनों ही खतरे में है। तमाम भोग–ऐश्वर्य के साम्राज्य के मोह को तज कर, सब कुछ अपनी मुट्ठी में समेटे रहने के मोह से छुटकारा पाकर ही स्त्री इस मध्ययुगीन मानसिकता की महक से मुक्ति पा सकती है। उसे वस्तु से व्यक्ति और व्यक्ति से खुद को व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लवलीन, प्रेम के साथ पिटाई,सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ. 37।
2. यथोपरि, पृष्ठ. 50।
3. वही, पृष्ठ. 27।
4. शर्मा कुमुद, विज्ञापन की दुनिया, पृष्ठ. 99।
5. नसरीन तसलीमा, हंस, जनवरी, 2012, पृष्ठ. 76।
6. पूर्वोक्त (वही), पृष्ठ. 75–76, अनुवाद रू बेश अमृता।
7. लवलीन, प्रेम के साथ पिटाई, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ. 25–26।
8. खेतान प्रभा, बाजार के बीच रू बाजार के खिलाफ, पृष्ठ. 13।
9. पचौरी सुधीश, उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, पृष्ठ.118।
10. राय ऋषिकेश, वर्तमान साहित्य, मार्च 2012, पृष्ठ. 34।
11. लवलीन, प्रेम के साथ पिटाई, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ. 26–27।
12. यथोपरि, पृष्ठ. 26।
13. वही, पृष्ठ. 58।
14. जैन अरविंद (अतिथि संपादकीय), स्त्री रू मुक्ति का सपना, 2004, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. 18।
15. सागर शैलन्द्रध्गुप्त रजनी, आजाद औरत कितनी आजाद, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ. 10।
16. बेटियों की क्षमायाचना, साहिर लुधियानवी, जैन अरविंद, स्त्री रू मुक्ति का सपना, 2004, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. 23।